

समझ आएगा जब हम किसी अन्य सिद्धांतिकी के माध्यम से इसे समझेंगे अन्यथा नहीं। यह बात स्वयं वाणी प्रकाशन के संपादक अरुण माहेश्वरी जी ने लिखी और कही है वे लिखते हैं कि 'यह किताब नव्य-इतिहासवादी, उत्तर-आधुनिकतावादी, उत्तर-संरचनावादी, संस्कृतिक भौतिकवादी नजरिए से हिन्दी साहित्य के नैतिकतावादी दरोगाओं द्वारा रीतिकाल की इन चिर निंदित स्त्रियों के सम्मान को बहाल करती है, रीतिकाल के कुपठियों की वैचारिक राजनीति को सप्रमाण ध्वस्त करती है और रीतिकाल को नए सिरे से पढ़ने के लिए विवश करती है।'<sup>10</sup> हालांकि वे लेखक के अधीन बात कर गए लेकिन वास्तविकता वे न पहचान सके कि रीतिकाल के बाद उन महिलाओं के साथ क्या हुआ और वे क्या होकर क्या कर रहीं हैं। इस लिए मैंने इसे सांस्कृतिक भौतिकवादी सिद्धांतिकी से समझा है।

हम निलज वनिता को आज शंका की दृष्टि से क्यों देखने लगे हैं इसका कारण आप सुधीश पचौरी के शब्दों के माध्यम से समझिए "यह भूमंडलीय समय है। मनुष्य एक साथ ही विश्व नागरिक है और स्थानीय है। अपने समाज में मौजूद उपद्रव बहुत कुछ आधुनिक और उत्तर-आधुनिक की टकराहटों का नातीजा है। इसलिए यह टिहरी गाँठ है जो खुल रही है। आधुनिकीकरण की योजना अपने यहाँ अंग्रेजों के जामने में शुरू हुई थी जिसे आजादी के बाद अखिल भारतीय स्तर पर लागू किया गया। उसके सामने स्वयं अपनी प्रकृति को पहचानने की चुनौती उठ खड़ी हुई है।"<sup>11</sup> आज हम विश्व नागरिकता को समझते हैं और उनकी चाल को भी इस लिए हम गाँठों से टकराने की चाप मोल ले रहे हैं और हमारे साथ है उत्तर-आधुनिकता की व्याकरण व बहस ! जहाँ हर 'चाल' और हर 'नीति' एक विज्ञापन है। जिनके पीछे ऊंचे दर्जे का काम करती है निगम या व व्यापार कला !

\*\*\*\*\*

### संदर्भ ग्रंथ-सूची :-

1. नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2022, पृ. 461
2. नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2022, पृ. 461
3. अपने होने का अर्थ, रेखा कस्तवार, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2012, पृ. 99
4. महिला सशक्तिकरण, सतीश कुमार, THE WOMEN PRESS, NEW DELHI, FRIST PUBLISHED - 2016
5. औरत कल, आज और कल, आशारानी व्होरा, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण - 2011, पृ. 5
6. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2017, पृ. 25
7. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2017, पृ. 9
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हृदयाल, प्रकाशन मयूर बुक्स, नई दिल्ली, 62 वाँ संस्करण - 2018, पृ. 413
9. फैसले अब हमारे हैं, रंजना श्रीवास्तव, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण - 2017, पृ. 126
10. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2017, आवरण पृष्ठ बाईं ओर
11. आलोचना से आगे, सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2000, आवृत्ति 2006, पृ. 7

## भारतीय सामासिक संस्कृति के पुनर्निर्माण में दारा शुकोह की भूमिका

आशीष कुमार तिवारी

(शाोधार्थी)

प्रो. चंद्रकांत सिंह

(शोध निर्देशक)

हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, जिला- काँगड़ा, पिन- 176215

ईमेल - chandrakants166@hpcu.ac.in

मो.-9805792455, 6388774476

**शोध सारांश-**संस्कृति हमारी मानवीय अस्मिता और अस्तित्व का मूल है। ज्ञान-शील, आस्था-विश्वास, कला-कौशल, कानून-शासन प्रणाली, आचार-विचार, रीति-रिवाज एवं अन्य क्रियाकलापों का समग्र जटिल रूप संस्कृति में परिलक्षित होता है। भारत बहु-सांस्कृतिक राष्ट्र है। यहाँ सदियों से विभिन्न आचार-विचार, धर्म- भावना एवं रीति-रिवाज के साथ लोग रहते आये हैं। आजकल प्रायः भारतीय समाज में विविध तरह की संकीर्णता, कट्टरता आदि का बोलबाला दिखाई देता है। ऐसे में विराट सांस्कृतिक विमर्श और सामासिक संस्कृति के पुनर्निर्माण की आवश्यकता है ताकि भारतीय अस्मिता को अक्षुण्ण रखा जा सके। सामासिक संस्कृति का तात्पर्य संस्कृतियों का मेल भर नहीं है बल्कि संस्कृतियों का पारस्परिक विलयन है। इतिहास साक्षी है कि संस्कृति के तत्व, धर्म, कला, साहित्य आदि परंपराओं में समयानुरूप ढलते रहे हैं और विराट बोध के कारक रहे हैं।

प्रस्तुत आलेख में सांस्कृतिक विमर्श एवं सामासिक संस्कृति के आलोक में दारा शुकोह के आध्यात्मिक अनुभव को समझने का प्रयास किया गया है। दारा का प्रयास भारत में ऐसी संस्कृति का निर्माण करना था जिसमें हिंदू और मुस्लिम पंथों की एकतानता हो। उसने समभाव से फारसी में "मज्म उल् बहरेन" और संस्कृत में "समुद्र संगम" नामक पुस्तकों की रचना की ताकि दोनों संस्कृतियों के सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन हो सके। यही नहीं आत्मीयता, बंधुत्व एवं सद्भाव उसके लेखन के मूल आधार थे। दारा ने हिंदू दर्शन और एकेश्वरवाद की सुचिंतित समझ के लिए उपनिषदों का गहन अध्ययन किया। उसने 52 उपनिषदों का फारसी में "सिरे अकबर" नाम से अनुवाद भी किया ताकि भारत की बहुल संस्कृतियों में एकत्व और समत्व स्थापित हो सके। प्रस्तुत शोध-आलेख दारा शुकोह के सामासिक सांस्कृतिक विचारों को उल्लिखित करने के साथ वर्तमान संदर्भों में भारत की सामासिक सांस्कृतिक आवश्यकता को भी व्याख्यायित करता है।

**शोध-आलेख -** संस्कृति किसी देश, जाति और समाज की आत्मा होती है। इसका कलेवर अत्यंत व्यापक है। अतः इसका अर्थ भी विभिन्न समूहों द्वारा विविध किया जाता है। कलाकर्मों से साहित्य, नृत्य, नाट्य, संगीत आदि से जोड़ते हैं वहीं नृतत्वविज्ञानी, समाजशास्त्री आदि मनुष्य के विविध व्यवहारों एवम् उपलब्धियों से। हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर ने इसे अपने वृहत्ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में धर्म एवं दर्शन से जोड़ा है। यही नहीं कट्टरता के निषेध एवं सहिष्णुता की व्यापक भावना को इसकी कसौटी मानते हैं।<sup>1</sup> समग्र रूप से भारतीय संदर्भ में उक्त सभी तत्व संस्कृति में समाहित किए जाते हैं। वस्तुतः हमारी ज्ञान-कला, साहित्य-दर्शन, कानून-कौशल, आचार - विचार, रीति - रिवाज, आस्था- विश्वास, तथा जीवन-मूल्यों और क्रियाकलापों में संस्कृति का संश्लिष्ट रूप दिखाई देता है।

संस्कृति सदियों से प्राण-धारा बनकर हमारे बोध एवं संस्कार में उद्बुद्ध होती रही है। इतिहास साक्षी है कि भारतीय संस्कृति ने अपनी सहिष्णुता, धर्म-परायणता एवं सद्भाव के द्वारा समूचे विश्व का मार्गदर्शन किया है। इस विशाल भू-भाग वाले देश में अनेक भाषा-भाषी रहे हैं जिन्होंने सदियों से अपनी बोली-बानी एवं आचरण की मीठी खुशबू को प्रसारित किया है ताकि व्यापक मानव-भावना का उत्कर्ष हो सके। भाषा, पंथ, परंपरा आदि की दृष्टि से भारतीय संस्कृति को विभिन्न सांस्कृतिक-धाराओं का महासंगम कह सकते हैं। जिसमें आर्य संस्कृति से लेकर आदिवासी, द्रविड़, तिब्बती, हड़प्पाई, मंगोली, तुर्की एवं यूरोपीय धाराएँ समाहित हैं। ये धाराएँ भारतीय संस्कृति की गंगा-जमनी तहेजीब को सामासिक संस्कृति में परिवर्तित करती रही हैं। भारतीय संस्कृति ने अनेक जातियों के श्रेष्ठ विचारों को अपने में समाहित किया है ताकि उसका आयतन संवर्धित हो सके। हमारी संस्कृति में यहाँ के मूल निवासियों आदि की समन्वय-भावना के साथ बाहर के देशों से आने वाले शकों, हूणों, यूनानियों की सांस्कृतिक भावना भी घुली हुई दिखाई देती है। अरबों, तुर्कों और मुगलों के घुलने-मिलने के बाद भी भारतीय मनीषा अपनी स्पष्टता, सटीकता एवं पृथकता के गुण को धारण करती रही है ताकि वह अपना विशेष दाय प्रस्तुत कर सके। यह और बात है कि इस देश में जीवन-गति की तलाश करने वाले शासकों और उनके अंध अनुयायियों ने इस संस्कृति को मिटाने और विनष्ट करने की अकारथ चेष्टा की। जब भी भारत की धरती वैमनस्य, घृणा एवं उन्माद का शिकार बनी, संतों ने अपनी पवित्र बानी से इस धरती को प्रकाशमान किया। हर बार के आक्रमण, अवमानना एवं व्यर्थ के जय-घोष के बाद भी आक्रान्ता इस धरती को चूर्णित न कर सके। इस धरती की सदाशयता एवं उपकार करने की भावना ने सभी को बांधकर रखा यही इसकी शक्ति, सामर्थ्य एवं ऊर्जा की ताब है।

भारतीय इतिहास में यह समन्वय और सामासिकता प्राचीन समय से दिखाई देती है और मध्यकाल के मुस्लिम शासन काल के दौरान जब अतिशय कट्टरता का बोलबाला आरंभ हुआ तब भी यह पूर्णतया समाप्त नहीं होती। उस समय सूफ़ी साधक और संत कवियों के साथ कुछ संस्कृतिधर्मी शासक और रोज़कुमारों ने इसे जीवंत रखा। इनमें मुगल शहजादा दारा शुकोह प्रमुख हैं। शहजादा दारा शुकोह ने आजीवन सामासिक संस्कृति के विकास के लिए प्रयत्न किया और इसी वजह से उसे अपनी जान भी गंवानी पड़ी। क्योंकि "उनके अपने समय में कट्टर उल्मा (धर्म विशेषज्ञ) उनको काफ़िर (धर्मभ्रष्ट) समझते थे वा अधिक से अधिक उनको ऐसे मुसलमान समझते थे जिन पर हिन्द संस्कार पड़ चुके थे।"<sup>1</sup> दारा के व्यक्तित्व को व्याख्यायित करते हुए प्रख्यात आलोचक मैनेजर पांडेय लिखते हैं "दारा शुकोह संगम-संस्कृति का साधक था। उसके विचार से इस्लाम हिन्दू धर्म दो समुद्रों की तरह हैं जिनके बीच संगम सम्भव है। इसी संगम के खोज और स्थापना की कोशिश दारा ने की।"<sup>3</sup> दारा से पूर्व भी सल्तनत और मुगल काल में संगम संस्कृति की परंपरा मौजूद थी। यह परंपरा सूफ़ीमत और अमीर खुसरो और जायसी की कविताओं में दिखाई देती है और साथ ही संत कवि कबीर, रज्जब, रहीम और दाद के वचनों में। जैसा कि मैनेजर पांडेय लिखते हैं- "एक परम्परा तसव्वुफ़ अथवा सूफ़ी मत की थी जो तेरहवीं-चौदहवीं सदी से भारत में फैल रही थी। उसी से जुड़े थे अमीर खुसरो, जिनकी कविता में संगम-संस्कृति की अभिव्यक्ति हो रही थी। दूसरी परम्परा हिन्दी के सन्त कवियों की थी, जिसके अगुआ थे कबीर और दाद। वे दोनों हिन्दू और इस्लाम के रूढ़िवाद के विरोधी और एकेश्वरवाद या तौहीद के साधक थे।"<sup>4</sup> दारा शुकोह को अपने पूर्वज बादशाह अकबर से भी यह परंपरा और प्रेरणा विरासत में मिली थी जिसने हिंदू धर्म-दर्शन के अनेक ग्रंथों को फारसी में अनूदित कराया। यही नहीं उसने सभी धर्मों के सद्गुणों का एकीकृत कर नवीन पंथ 'दीन -

ए - इलाही'की स्थापना की। दारा शुकोह तत्कालीन भारतीय समाज के इस्लाम और हिंदू धर्म- दर्शन में समन्वय और एकता स्थापित करने के लिए मुख्यतः दो पुस्तकों की रचना करता है। एक फारसी में मज्म 'उल बह्रैन' और दूसरी संस्कृत में 'समुद्र-संगम'। मज्म 'उल बह्रैन' फारसी पढ़े मुसलमानों के लिए थी और 'समुद्र-संगम' संस्कृत पढ़े हिंदुओं के लिए। 'समुद्र संगम' में दारा पुराणों में वर्णित समुद्र मंथन के रूपक का उपयोग करते हुए अपनी कृति के बारे में लिखता है "विष्णु रूपी आत्मा की इच्छा से अपने मन का मैंने मन्दर बनाया और संकल्प-विकल्पों को देव-दैत्य बनाया और वेद रूपी समुद्र का मन्थन करके एक ऐसे ज्ञान-रत्न को निकाला, जो चौदह रत्नों से अलग है।"<sup>5</sup> वह इन पुस्तकों में अपने ज्ञान और विश्वास की अभिव्यक्ति करता है। वह दोनों धर्मों को बराबर महत्व देता है और सूफ़ी मत व हिंदू धर्म - दर्शन के बीच परिभाषा - भेद के अतिरिक्त कोई फ़र्क नहीं मानता। वह अपने अनुभव से प्राप्त ज्ञान को अभिव्यक्त करता है- "मैंने देखा कि स्वरूप की प्राप्ति को लेकर, परिभाषा-भेद के अतिरिक्त कुछ भी भेद नहीं है। अतः मैंने दोनों की एकवाक्यता की।"<sup>6</sup> दारा शुकोह ने सत्य को जानने वाले दो समुदायों के सत्य के ज्ञान और विवेक की अभिव्यक्ति मज्म 'उल बह्रैन' के 22 खंडों में की है। अनासिर (तत्त्व), हवास (इन्द्रिय), शरल (भक्ति), सिफ़ते अल्लाहत आला (सर्वोच्च ईश्वर के गुण), रूह (आत्मा), आलमे-अरबेआ (चारजगत), आवाज़ (ध्वनि), नूर (प्रकाश), रूयत (ईश्वर-दर्शन), इस्माये अल्लात आला (सर्वोच्च ईश्वर के नाम), नबूवत व विलायत (सिद्धत्व), ब्रह्मांड, जिहात (दिशा), आलमे-बर्जख (मृत्यु तथा पुनरुत्थान की अन्तर्वेला), कयामत (प्रलय), आदि सभी तत्त्वों की व्याख्या के दौरान दारा शुकोह ने इस्लाम धर्म, खास तौर से सूफ़ीमत, और हिन्दूधर्म- दर्शन के बीच समानता और एकता की स्थापना की ताकि मुसलमान और हिन्दू धर्म के समुदायों के बीच एकता, आत्मीयता और सद्भाव का विकास हो।<sup>7</sup>

दारा ने वर्ष 1657 में हिन्दू धर्म - दर्शन के आधारभूत ग्रंथ उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद 'सिरि अकबर' नाम से किया। सिरि अकबर का अर्थ होता है महान रहस्य। दारा शुकोह की मान्यता थी कि उपनिषद ईश्वर प्रदत्त पहली किताब है जिसका उल्लेख कुरान में भी है। वह कुरान का हवाला देता है - "कुरआन में यह लिखा है कि एक किताब है जो छिपी हुई है। उसको पवित्र व्यक्तियों के अलावा कोई छु नहीं सकता। यह संसार के मालिक या ईश्वर की देन है।"<sup>8</sup> इस सम्बन्ध में कालिका रंजन काननगो लिखते हैं - "उसने प्रयास किया कि हिंदू धर्म तथा इस्लाम के बीच की खाई को पाट दे - और यह जनसाधारण के लिए नहीं परंतु दोनों जातियों के शिष्ट वर्ग के हित में। वह इस प्रतिज्ञा को लेकर चला कि समस्त दैवी धर्म-ग्रन्थों का एक सामान्य उद्गम स्थान अवश्य होगा क्योंकि कुरान में एक 'उम्मुल किताब' (गुप्त पुस्तक) का उल्लेख है। जिस उत्साह तथा विश्वास से सर गलाहड 'पवित्र पात्र' की खोज में दत्तचित्त हो गया था, उसी उत्साह तथा विश्वास से दारा इस गुप्त पुस्तक की खोज में संलग्न हो गया। इस्लाम की सीमाओं को पार करके उसने उसी पुस्तक को उपनिषदों के रूप में पाया जो अपवित्र दृष्टि से दिखाई नहीं दे रही थी।"<sup>9</sup> दारा शुकोह ने कुरान की मदद से उपनिषदों के महत्व की व्याख्या की और तौहीद को स्पष्ट करने का प्रयास भी किया जिससे भारत में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में एकता और सामंजस्य स्थापित हो सके। दारा शुकोह ने धर्म-दर्शन के साथ ही भाषाई कट्टरता और संकीर्णता को दूर करने का भी विशद प्रयास किया। उसने उस समय संस्कृत का अध्ययन किया जब मुसलमानों के लिए यह भाषा वर्जित समझी जाती थी। उसने संस्कृत के उद्भट विद्वान आचार्य जगन्नाथ को अपना गुरु माना और उनसे संस्कृत का अबाध ज्ञान प्राप्त किया। दारा ने न केवल संस्कृत का अध्ययन किया बल्कि 52 उपनिषदों का संस्कृत से फारसी भाषा में अनुवाद भी किया।

अनुवाद के साथ ही उसकी संस्कृत भाषा की कृति 'समुद्र संगम' उसके सामासिक भाषाई प्रतिबद्धता के पुष्ट करती है। दारा द्वारा गोस्वामी नृसिंह सरस्वती को लिखा गया प्रशस्ति पत्र उसके संस्कृत भाषा के ज्ञान को स्पष्ट बयां करता है। इस पत्र में दारा नृसिंह गोस्वामी की जो यथोचित वंदना कर अपनी बात रखता है वह भारतीय मानस के 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' उक्ति को चरितार्थ करती है।  
**“स्वस्तिश्रीमप्रपंचचिरतरचित्तसिंचित्तिसमुदचंद्रोचिःसंचयचाक चिक्यचमत्कारचर्चनचर्चितचंद्रविरोचनचित्रभनुरुचिनिचयाच्युतचन्द्रचूणचरणचिन्तामणिषुरुचिरतरवचनरचनसमुच्चरणचातुरीसंचारसमंचनवंचित-वाचस्पतिचतुराननपंचाननेषु।”<sup>10</sup>**

इस प्रकार दारा शुकोह ने हिंदू धर्म और इस्लाम को मानने वालों के बीच एकता और सामाजिक समरसता स्थापित कर सामासिक संस्कृति के विकास का जो प्रयास किया है वह महत्त्वपूर्ण है। उसने आजीवन हिंदू धर्म और इस्लाम मतानुयायियों में शांति और प्रीति की वृद्धि की। इस संबंध में डॉ. काननगो की टिप्पणी सर्वथा संगत प्रतीत होती है – “यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि भारत में जो कोई भी धार्मिक शान्ति की समस्या का हल करना चाहता है, उसको यह कार्य वहाँ से प्रारम्भ करना होगा जहाँ पर दाराशिकोह ने उस कार्य को छोड़ा था तथा उसको उस मार्ग का अनुसरण करना होगा जिसको उस राजकुमार ने निर्धारित किया था।”<sup>11</sup> निश्चित ही दारा शुकोह ने भारतीय संस्कृति के नियामक तत्वों पर विचार करते हुए इसके महात्म्य को उजागर किया। दारा के चिंतन, दर्शन एवं जीवन में भारतीयता की छाप दिखाई देती है। इस्लाम के आने के बाद जिस तेजी के साथ संस्कृति एवं मानवीय-बोध का पराभव हुआ। हिन्दू देवल स्थान एवं देव मंदिरों को जिस आक्रामकता के साथ चूर्णित किया गया वह अत्यंत हृदय विदारक था। दारा मजहबी उन्माद का सख्त विरोधी था यही कारण है कि ज्ञान की तलाश में वह कुन एवं कुरा के मेयार से बाहर आकर भारतीय विद्या परम्परा को महत्त्व देता है। दारा शुकोह के प्रयास आज भी प्रासंगिक हैं। आज दारा के कार्य को बड़े स्तर पर देखे जाने की आवश्यकता है ताकि विरोधी शक्तियां इसे खण्डित एवं निष्प्राण न कर सकें। हमारी भाव-भाषा, खानपान, पहनावे, कला, संगीत आदि में हमारी प्रखरता ही हमें विशिष्ट बनाती है। यह इस बात की पोषक है कि हम गंगा-जमुनी तहजीब के सही पहरए हैं। मानवता के विकास में, सद्भाव की रक्षा में हमने आज से नहीं बल्कि सदियों से समूचे विश्व को आलोकित किया है। हमारी विशद सांस्कृतिक पहचान के बारे में पं. मदन मोहन मालवीय ने ठीक कहा है कि “भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशालता और उसकी महत्ता तो संपूर्ण मानव के साथ तादात्म्य संबंध स्थापित करने अर्थात् ‘वसुधैवकुटुंबकम्’ की पवित्र भावना में निहित है।” निश्चय ही हम अहम से इदम की भावना को अपने हृदय में धारण कर बढ़ते रहे ताकि सही अर्थों में ज्ञान, प्रेम एवं शील की स्थापना कर सकें। यह हमारी ग्रहण शीलता का स्वाभाविक गुण था कि हमने सदा सीखा। हमारे पुरखों ने अपनी ज्ञान-संपदा एवं चिन्तना से सतत अन्वीक्षण दृष्टि अर्जित की जिसके केंद्र में सद्भाव है। किंतु वर्तमान सन्दर्भ में अधिकार-कर्तव्य आदि में व्याप रही हीन भावना ने हमें संकुचित किया है। निरे स्वार्थ से अंध होकर हमने अपनी भाषा एवं संस्कृति को हेय-दृष्टि से देखने का कलुषित कार्य किया है। जाति-पंथ एवं धड़ों में बटे हुए हम वर्चस्व एवं मद में डूबे हुए हैं, आवश्यकता इस बात की है कि हम संकुचित स्व से ऊपर उठकर देश-प्रथम की भावना के साथ कार्य करें ताकि हमारी बौनी मान्यताओं का नाश हो एवं सृजन के पुष्प सुवासित हो सकें। सामासिक संस्कृति का तात्पर्य केवल संस्कृतियों का योग भर नहीं है बल्कि संस्कृतियों का मिलकर एक हो जाना है। विविध संस्कृतियों के तत्व, धर्म, दर्शन, मान्यताओं की पारस्परिक अविभाज्यता

ही किसी राष्ट्र का सही निर्माण करती है। इसमें कोई एक संस्कृति विजेता और दूसरी विजित न होकर दोनों सहचरी होती हैं। इस तरह शनैः शनैः एक दूसरे के विचारों को अंगीकार कर संस्कृतियां विभेद रहित हो जाती हैं ताकि मानवता का सम्यक एवं युग अनुरूप विकास हो सके। अपसंस्कृति के विकास के इस युग में दारा शुकोह द्वारा किया गया कार्य मुस्लिम निगाह से भारतीय संस्कृति को निरखना है, इस निरखने में श्रेष्ठता का दावा नहीं है बल्कि साक्षीत्व की आँख से संस्कृति को देखते हुए इसके सभी प्रस्थान बिन्दुओं पर उचित दृष्टि रखनी है। यह दृष्टि भी आधुनिक पश्चिमी शिक्षा के युग में दीगर एवं महत्वपूर्ण है जिस पढ़ते एवं आँकते हुए हम अपनी संस्कृति के जीवत को देख सकते हैं।

\*\*\*\*\*

### संदर्भ ग्रंथ -

1. सिन्हा सच्चिदानंद, संस्कृति विमर्श, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्रथमसंस्करण, भूमिका, पृष्ठ संख्या- 08
2. काननगो कालिका रंजन, दारा शिकोह, गया प्रसाद एंड सन्स प्रकाशन, आगरा, द्वितीय संस्करण की भूमिका
3. पांडेय मैनेजर, दारा शुकोह संगम - संस्कृति का साधक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2024, पृष्ठ संख्या- 12
- 4 - वही, पृष्ठसंख्या - 94
- 5- शुकोह दारा, मज्म 'उल बहरैन', (अनुवादक -जगन्नाथ पाठक), राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या -175
- 6- वही, पृष्ठ संख्या - 89
- 7- पांडेय मैनेजर, दारा शुकोह संगम- संस्कृति का साधक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2024, पृष्ठसंख्या - 94
- 8- वही, पृष्ठसंख्या- 59
- 9- काननगो कालिका रंजन, दाराशिकोह, गया प्रसाद एंड सन्स प्रकाशन, आगरा, द्वितीय संस्करण की भूमिका
- 10- शुकोह दारा, सिरे अकबर, (संपादक - अनुवादक: डॉ. हर्षनारायण), भुवनवाणीट्रस्ट, लखनऊ, संस्करण- 1975 की भूमिका
- 11- काननगो कालिका रंजन, दाराशिकोह, गया प्रसाद एंड सन्स प्रकाशन, आगरा, द्वितीय संस्करण की भूमिका